JULY, 2000

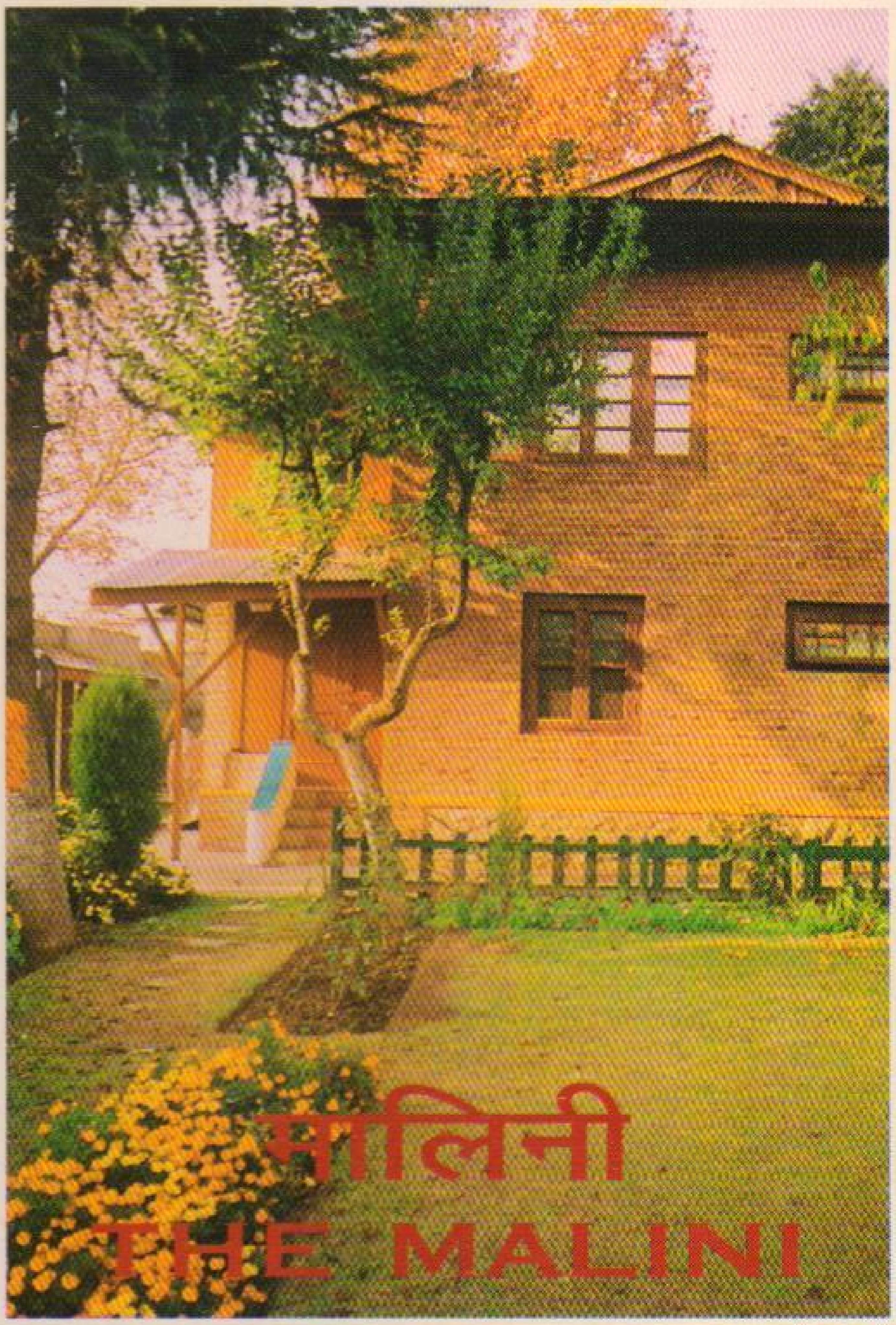

ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. VI NO. II ISSUE XXI
JULY, 2000

मालिनी

THE MALINI

Abhinavagupta about Mālinī

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी।।

Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.

T.A.A. XXXVII

ISHWAR ASHRAM TRUST
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Board of Trustees :
Sri Inderkrishan Raina
(Secretary/Trustee)
Sri Samvit Prakash Dhar
Sri Brijnath Kaul
Sri Mohankrishan Wattal

Editorial Board :
Sushri Prabhadevi
Prof. Nilakanth Gurtoo
Prof. Makhanlal Kukiloo
Sri Somnath Saproo

Sri Brijmohan
(I.A.S. Retd.) Co-ordination

Publishers :
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

Administrative Office :
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 553179, 555755

Branch Office :
F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Tel. : 6943307
Telefax:6955611

July, 2000
Price : Rs. 20.00

© Ishwar Ashram Trust

Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 328-1568, 327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

विषय सूची : Contents

	सम्पादक की लेखनी से		4
1.	Śiva Sūtras	*Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāja*	6
2.	God-man's Command for New Millennium	*Shin Shiva Svayambhū*	15
3.	Śūnya in Vijñāna Bhairava	*Dr. Bettina Baumer*	19
4.	त्रिपुष्प	*Dr. R.Panikkar*	27
5.	विज्ञान भैरव-समीक्षात्मक अध्ययन	*शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज*	28
6.	शैवदर्शन के वातायन से	*प्रो० नीलकंठ गुर्टू*	32
7.	श्री गुरवे लक्ष्मणाय नमः	*आचार्य रामेश्वर झा*	34
8.	शैवाचार्य श्री नागार्जुन रचित चित् सन्तोष त्रिंशिका	*वी. एन. जोत्शी (भट्ट)*	35
9.	From Ashram Desk	*Administrative Office*	38
10.	संयमी का महाप्रस्थान	*ईश्वर आश्रम ट्रस्ट*	39
	संवेदनासंदेश		40

संपादक की लेखनी से

मालिनी का यह अंक पाठकों के सामने प्रस्तुत करते हुए हमें महान् प्रसन्नता हो रही है। इस अंक की विशेषता इस बात के लिए अधिक है कि यह अंक श्रीगुरु पूर्णिमा के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। सद्गुरु महाराज की मधुर स्मृति से उतावला बनाने वाला आज का दिन हमें अपने कर्मक्षेत्र में सुव्यवस्थित रूप से कार्यरत होने के लिए प्रेरित करता है, हमारे मस्तिष्क पर पड़े मालिन्य के आवरण को हटाकर उसे उज्ज्वल बनाता है, व्यावहारिक जगत की चमचमाहट के दुष्प्रभाव से कोसों दूर रखता है, महाविभूति के प्रताप से प्रतापी बनाता है, अन्तर्दृष्टि पूर्ण जिज्ञासु साधकों को सदा गुरुस्मृति में विनम्र रखता है, परम आनन्द और परम शान्ति के समुद्र ईश्वर से अकाट्य सम्बन्ध जोड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप जहां भी हम होंगे वहीं शान्ति और आनन्द को आकर्षित कर सकेंगे। आज का दिन अपने समस्त लौकिक शत्रुओं के उद्‌गम स्थान—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—इन छः शत्रुओं को दमन करने की शक्ति प्रदान करने में अचूक राम बाण है। आज का दिन सभी के अन्दर विद्यमान सत्प्रकाश को जगा सकता है और यही आध्यात्मिक प्रकाश शिष्य के जीवन को बदल सकता है। पारस, तांबा और पीतल को छूने से सोना नहीं बनाता अपितु लोहे को सोने में बदलता है। इसी प्रकार पारस जैसे शक्तिशाली सद्‌गुरु आज के दिन लोहे के समान कालुष्य पूर्ण हृदय वाले शिष्य को सोने के समान उज्ज्वल बनाते हैं और विशिष्ट क्षमता वाले शिष्यों को उभारते हैं। पारस लोहे को सोना बनाता है पर पारस नहीं। शिष्य भी जब तक गुरु से जुड़ नहीं जाता तब तक उसमें सद्‌गुरु की विशिष्टता नहीं आती। जैसे एक जलता दीपक असंख्य तेल बत्ती युक्त दीपकों को छूने मात्र से ही जला देता है उसी प्रकार सद् विचार और सद्‌बुद्धि वाले प्राणियों का हृदय दीपक जैसे प्रकाशमान सद्‌गुरु के प्रकाश से आज के दिन गुरु स्मरण मात्र से ही प्रकाशित हो उठता है। जैसे चन्दन का वृक्ष अपने आस पास में शीशम बबूल आदि वृक्षों को अपनी सुगन्ध से सुवासित करता है इसी प्रकार चन्दन जैसे शीतल गुरु आज के दिन निम्न से निम्नतम प्रकृति के शिष्य को अपनी महक से संसार की ओर विमुख बना देता है कबीर के शब्दों में—

सद्‌गुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावन हार॥

काष्ठ में आग की तरह, फूल में गन्ध की तरह, दूध में घी की तरह, फल में रस की

तरह, तिल में तेल की तरह कण-कण में विद्यमान सद्गुरु महाराज के असीम माहात्म्य का, श्री गुरु पूर्णिमा के आज के इस महोत्सव पर बार-बार स्मरण करते हुए हम श्री चरणों में नतमस्तक हो आत्मोद्धार की याचना करते हैं।

सद्गुरु महाराज के भक्तों और प्रेमियों को यह पढ़कर प्रसन्नता होगी कि दक्षिण दिल्ली स्थित सरिताविहार में निर्माणाधीन ईश्वरआश्रम का निर्माण कार्य प्रबल वेग से चल रहा है। तलकक्ष (Basement) का कार्य समाप्त हुआ अब ऊपर की मंजिलों का काम प्रारम्भ हुआ। आशा है कि सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती तक 90% निर्माण कार्य सम्पन्न होगा। यह पढ़कर आप सब आश्चर्य चकित होंगे कि नाममात्र से ही सद्गुरु महाराज को जानने वाले भक्तजन मुक्तहस्त से जो धनराशि देते हैं वह स्वयं एक रहस्य है। सपने में प्रेरणा पाकर कई भक्तजन दानराशि देकर अपने को कृतार्थ समझते हैं। सद्गुरु महाराज क्या लीला रचते हैं यह समझ से बाहर है। मैं दानवीरों से पुनः प्रार्थना करता हूँ कि इहलौकिक और पारलौकिक सुखप्राप्ति के लिए इस प्रशस्त कार्य के लिए दिलखोल कर दान देके अपने को कृतकृत्य समझें। स्मरण रहे कि हमारा उस सद्गुरु महाराज से सम्बन्ध है जिन की समता की कोई भी महाविभूति आज तक नहीं उठी है न आगे उठेगी। हमारे सद्गुरु महाराज सारे संसार का शासन सुचारू ढंग से चलाने में व्यस्त हैं, ऐसा उन्होंने स्वयं बताया। हम सब का परम कर्त्तव्य है कि हम उनके आप्तवचनों का कर्मणा मनसा वाचा पालन करें।

आज तक जिन भक्तजनों, सच्छिष्यों व प्रेमियों ने सरिताविहार दिल्ली के ईश्वरआश्रम व अमृतेश्वर मन्दिर के निर्माण कार्य के लिए मुक्तहस्त दान दिया, ईश्वराश्रम ट्रस्ट उन लोगों का आभारी है। हम इन दानवीरों को पुनः याद दिलायें कि इन का दिया हुआ आर्थिक अनुदान आयकर सीमा ८०-जी-१९६१ अनुच्छेद के अन्तर्गत आयकर से मुक्त समझा जायेगा।

ईश्वराश्रम परिवार को गुरुपूर्णिमा पर शुभकामनायें।

जय गुरुदेव

गुरु पूर्णिमा
१६.७.२००० *प्रो० मखनलाल कुकिलू*

ŚIVA SŪTRAS

with Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa Joo Mahārāj

(continued from last issue)

यदा तु मितसिद्धीरनभिलष्यन् विश्वात्मप्रथामिच्छति तदा अस्य–

शुद्धविद्योदयात् चक्रेशत्वसिद्धिः॥ २१॥

Śuddhavidyodayāt cakreśatvasiddhiḥ

यदा तु– When such a yogi, अनभिलष्यन्– unmindful of, मितसिद्धीः– limited powers विश्वात्म प्रथामिच्छति wants to have this whole universe one with himself, तदा अस्य– then this yogi–

शुद्धविद्योदयात् चक्रेशत्वसिद्धिः– Abstains from such powers and attains lordship over the wheel of universal Energies through the rise of pure knowledge. i.e. pure knowledge arises by being unmindful of limited powers (भूतसंधान भूतपृथकत्व etc. are limited powers) and by that he becomes the master of śakti cakra (शक्ति चक्र) wheel of Universal Energies.

Swami ji reveals this fact while explaining it that Lord Kriṣṇa also had practised this very siddhi when He manifested Viśvarūpa and blessed Arjuna. That was greatest yogic power. He utilized his power in universal way. (To get success in examination or in all worldly matters is the result of limited powers. Shaking the whole world by earthquake or inundating every thing by heavy rainfall is the result of universal power).

वैश्वात्म्यप्रथावाञ्छया यदा शक्तिं संधत्ते तदा 'अहमेव सर्वम् इति शुद्धविद्याया उदयात् विश्वात्मक स्वशक्ति चक्रेशत्वरूपं माहेश्वर्यमस्य सिद्धयति।

वैश्वात्म्यप्रथावाञ्छया–For attaining universal state of being, when He concentrates or contemplates the energy of will then, I am one with universe, then through the rising of Śuddhavidyā in the form of full control over His universal ways, the glory of Śiva is obtained by that yogi.

When the yogi for attaining universal state of being, concentrates or contemplates the energy of will, he feels that the pure knowledge comes

श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज

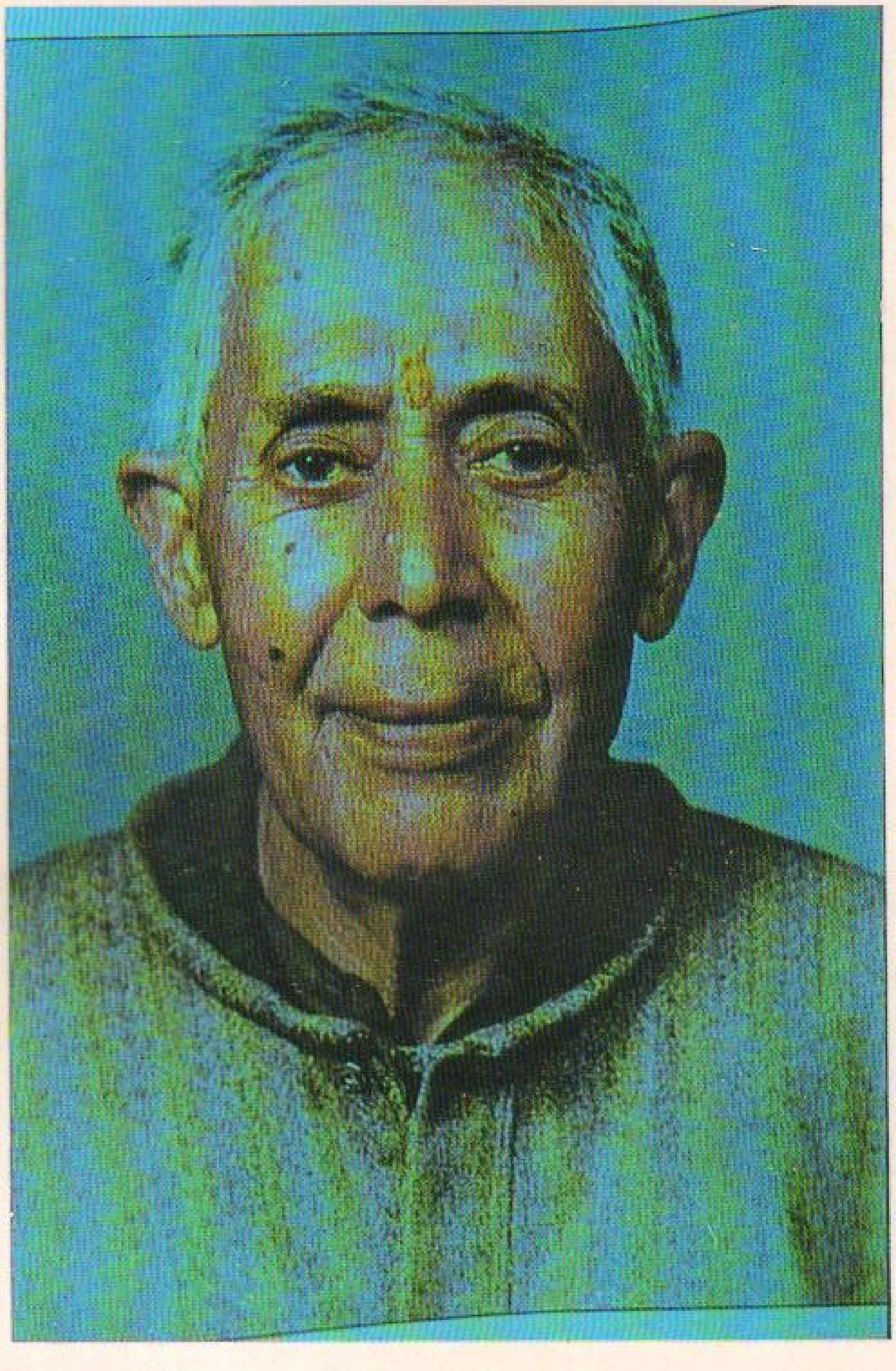

आविर्भावदिवस	महासमाधिदिवस
9-5-1907	27-9-1991

to him that I am one with universe, then glory of Maheśvara is attained by that yogi by which he becomes the master of universal ways by himself.

तदुक्तं स्वच्छन्दे–As is said in Svacchanda Tantra —

तस्मात् सा तु पराविद्या यस्मादन्या न विद्यते।
विन्दते ह्यत्र युगपत् सार्वज्ञ्यादिगुणान् परान्॥
वेदनानादिधर्मस्य परमात्मत्व बोधना।
वर्जना परमात्मत्वे तस्मात् विद्येति सोच्यते॥
तत्रस्थो व्यञ्जयेत् तेजः परं परमकारणम्।
परस्मिंस्तेजसि व्यक्ते तत्रस्थः शिवतां व्रजेत्॥ इति।

तस्मात्– therefore, सातु पराविद्या– that pure knowledge is the supreme knowledge, यस्मादन्या न विद्यते– no other knowledge exists except that, ह्यत्र–in that pure knowledge, सार्वज्ञ्यादि गुणान् परान्–all the highest qualities of सर्वज्ञता, तृप्ति अनादि बोध etc. युगपत् विन्दते – are being achieved simultaneously.

Therefore that pure knowledge is the supreme knowledge, no other knowledge exists except that. In that pure knowledge all the highest qualities of omniscience etc. are being achieved simultaneously.

Now the etymology of Vidyā is being explained :—

वेदना– pure knowledge is called वेदना (vedanā)

अनादिधर्मस्य– because it makes us acquinted with the nature of Lord Śiva. As per Sanskrit grammar the root (धातु) of वेदना (vedanā) is विद् ज्ञाने (vid jñāne) which means knowledge (विद् ज्ञाने is root). वेदना is called Vidyā because as per विद् विचारणे-(vid vicāraṇe) root it is परमात्मत्व बोधना i.e. it is the recognition of Parama Śiva (परमशिव). Third meaning of वेदना as per विद्लृलाभे (vidlrlābhe) root is वर्जना परमात्मत्वे–i.e. by this pure knowledge one discards the objective world and attains the highest state of Lord Śiva. It is by these three different meanings वेदना is designated as Vidyā– the pure knowledge.

Pure knowledge is called (vedanā) because she enables us to be

acquainted with the nature of Lord Śiva, because she is the means for recognizing the Highest Self, because by this pure knowledge one discards the objective world and gets united with the highest by being established in unmanā (उन्मनावस्था) state.

तत्रस्थो– on being established in that pure knowledge, व्यञ्जयेत् तेजः – yogi should feel the central light, परं परमकारणम्– which is highest and is of the form of Lord Śiva, परस्मिंस्तेजसे व्यक्ते– on the manifestation of that central light, तत्रस्थः – on being seated there yogi, शिवतां व्रजेत्– becomes one with Lord Śiva.

On being established in that pure knowledge yogi should feel the central light which is highest and is of the form of Lord Śiva. On the manifestation of that light, if yogi is established there, he becomes one with Lord Śiva.

तदेतत्

दिदृक्षयेव सर्वार्थान्यदा व्याप्यावतिष्ठते।
तदा किं बहुनोक्तेन स्वयमेवावभोत्स्यते॥
इत्यनेनैव संगृहीतम्।

तदेतत् the same idea, संगृहीतं– has been explained, इत्यनेनैव– in the following verse of Spanda Kārikā -

यदा–when that yogi, who has established himself in pure knowldege, दिदृक्षयेव सर्वार्थान्– is merely desirous of witnessing of 118 Bhuvanas, व्याप्यावतिष्ठते–he pervades in them. तदा–what happens to him afterwards किं बहुनोक्तेन–it is useless to explain much, स्वयमेवावभोत्स्यते–in short this yogi gets knowledge of these Bhuvanas by himself.

When that yogi, who has established himself in pure knowledge, is merely desirous of witnessing of one-hundred eighteen Bhuvanas, he pervades in them. What experience is gained by him there, it is useless to focus on that. In short this yogi gets the knowledge of these Bhuvanas by

himself. In this above said Sūtra Śuddhavidyā should not be taken as Śuddhavidyā Tattva but here it means that supreme knowledge, that supreme consciousness in which everything appears as self. It is the उन्मनावस्था (unmanā avasthā).

When you feel the universal bliss or you experience हरिरेवजगत् जगत् एव हरिः that is called (viśvātma prathā or śiva vyāptiḥ)

When you experience your own self that is called आत्मप्रथा or आत्म व्याप्तिः (ātmaprathā or ātmavyāptiḥ)

यदातु स्वात्मारामतामेव इच्छति तदा अस्य, यदा– when, however, इच्छति– he desires, स्वात्मारामतामेव– only the happiness of repose within himself then he has–

महाहृदानुसन्धानान्मन्त्रवीर्यानुभवः॥ २२॥
Mahāhṛdānusandhānānmantravīryānubhavaḥ

By contemplating on supreme ocean, self experience of the universal I occurs.

महाहृद– the great ocean or the great source of Divine power, अनुसन्धानात्– by contemplating on or by mental union, मन्त्रवीर्यानुभवः– experience of the supreme consciousness, मन्त्र-वीर्य– which is generative source of all Mantras. "स्वात्मारामता"– svātmārāmatā is that state of a yogi when he neglects the world and its pleasures completely and remains always established in his own bliss.

पराभट्टारिका संवित् इच्छाशक्ति प्रमुखं स्थूल मेयपर्यन्तं विश्वं वमन्ती-पराभट्टारिका संवित्– the supreme energy of consciousness (it is called parāvāk (परावाक्) parāhantā (पराहन्ता) svātantrya (स्वातन्त्र्य) and Parā Śakti (पराशक्ति) also). इच्छाशक्ति प्रमुखे स्थूल मेयपर्यन्तं विश्वं वमन्ती– creates this universe, just right from his internal energy of will to his energy of action i.e. projecting the universe from the most subtle to gross objects. It is because of this pure knowlege it is a great source of Divine power.

खेचरीचक्राद्यशेषवाह प्रवर्तकत्व-- it sets in motion the whole group of

power currents namely Khecarī (खेचरी) Gocarī (गोचरी) Bhucarī (भूचरी) and Dikcarī (दिग्चरी) so it is called महाह्रदः– a great source or the great lake of Divine power. स्वच्छत्वानावृतत्व गम्भीरत्वादि धर्मयोगान्महाह्रदः– it is crystal clear (स्वच्छत्व) because it reflects the whole cosmos in it, it is not covered by any thing (अनावृतत्व) because it reflects universe but the universe cannot cover it up, it is fathomless (गंभीरत्व) because it cannot be understood easily आदि धर्मयोगात्– because of all these characteristics it is (Śuddhavidyā– शुद्धविद्या) called महाह्रदः– the endless source of Divine energy.

तस्यानुसंधानात्-अन्तर्मुखतया अनारतं तत्तादात्म्य विमर्शनात्, वक्ष्यमाणस्य शब्दराशि स्फारात्मक पराहन्ता विमर्शमयस्य मन्त्रवीर्यस्य अनुभवः-स्वात्मरूपतया स्फुरणं भवति। अत एव श्री मालिनी विजये–

"या सा शक्तिर्जगद्धातुः कथिता समवायिनी" इत्युपक्रम्य इच्छादि प्रमुख पंचाशत् भेदरूपतया मातृका-मालिनी रूपतां अशेष विश्वमयी शक्तेः प्रदर्श्य, तत एव मन्त्रोद्धारे दर्शितः, इति परैव शक्तिर्महाह्रदः; ततः तदनुसंधानात् मातृका मालिनी सतत्त्वमन्त्र वीर्यानुभव इति युक्तमुक्तम्।

एतदेव–
तदाक्रम्य बलं मन्त्राः सर्वज्ञबलशालिनः।
प्रवर्तन्तेऽधिकाराय करणानीव देहिनाम्॥
इत्याद्युक्त्या भङ्ग्या प्रतिपादितम्।

तस्यानुसंधानात्– When a yogi is mentally united with this Supreme god–consciousness or when he meditates on that Supreme god consciousness अन्तर्मुखतया अनारतं तत्तादात्म्यविमर्शनात्– he diverts all the flow of his organs into introverted state not extroverted, ceaselessly, the मन्त्रवीर्य is obtained by that way of meditation. वक्ष्यमाणस्य– to be described in the sequel. शब्दराशि– a multitude of words, स्फारात्मक– which expands in the form of, पराहन्ताविमर्शमयस्य– the mantra of Supreme I-consciousness, मन्त्र वीर्यस्यानुभवः– the experience of the Supreme pure knowledge which is the generative source of all mantras, स्वात्मरूपतया स्फुरणं भवति– it is obtained by an aspirant not in objective way but he realizes this मन्त्रवीर्य in subjective

way i.e. in subjective consciousness.

अत एव श्री मालिनी विजये– As is said in Mālinīvijaya इत्युपक्रम्य– beginning with:– या सा शक्तिर्जगत् धातुः– that supreme independent energy of Lord Śiva, कथिता– said to be समवायिनी– the inseparable power of the world's supporter etc., इच्छादि प्रमुख– icchā śakti (Divine will power) taking the leading part, पञ्चाशत भेद रूपतया मातृका मालिनी रूपतां–with a variety of fifty letters in the form of Mātṛkā and Mālinī (16 letters of vowels and 34 letters of consonants total 50 letters Mātṛnkā is 50 letters from अ to क्ष in regular form and मालिनी is 50 letters from न to फ in irregular form अशेष विश्वमयी शक्तेः प्रदर्श्य– showing that this Śakti appears as the entire universe, तत एव– throgh that śakti मन्त्रोद्धारो– the emergence of mantra of I consciousness, दर्शितः– it has been described इति परैव शक्तिर्महाह्रदः– thus the highest Śakti is the great lake, the infinite source of Divine power, ततः– therefore, तदनुसंधानात्– by mental union with that, मातृका मालिनी सतत्त्वमन्त्रवीर्यानुभवः– the mantra of the nature of Mātṛkā and Mālinī, yogi has the experience of the Supreme I-consciousness which is the generative source of all mantras. इति युक्तमुक्तम्– therefore it has been rightly said.

एतदेव इत्याद्युक्त्या भङ्ग्या प्रतिपादितम्–

This point has been explained in Spandakārikā in another way in the following verse :–

तदाक्रम्य बलं मन्त्राः –

Mantras on catching hold of the power of Spanda Tattva, get endued with the power of omniscience and perform their functions just as the senses of the embodied do.

The Supreme energy of consciousness creates this universe just right from his internal energy of will projecting the universe from the most subtle to gross objects. It sets in motion the whole group of power currents namely khecarī etc. It is crystal clear, it is not covered by any thing, it is

fathomless, because of all these characteristics this Śuddhavidyā–pure supreme knowledge, is called the endless source of Divine energy. When a yogi is mentally united with this supreme god-consciousness, he diverts all the flow of his organs into introverted state, ceaselessly and by that way of meditation Mantravīrya is obtained. A multitude of words which expands in the form of the Mantra of Supreme I-consciousness is the generative source of all Mantras. It is obtained by an aspirant not in objective way but he realizes this Mantra-Vīrya in subjective way i.e. in subjective consciousness. As is said in Mālinīvijaya that, that supreme independent energy of Lord Śiva is said to be the inseparable power of the world's supporter इच्छाशक्ति (Icchā Śakti) taking the biding part with a variety of fifty letters in the form of Mātrikā and Mālinī, showing that the Śakti appears as the entire universe. Through that Śakti the emergence of mantra of I consciousness has been described. Thus this highest Śakti is the infinite source of Divine power. Therefore by mental union with that the mantra of the nature of Mātrika and Mālinī are experienced by a yogi who has the experience of the Supreme I consciousness which is the generative source of all Mantras. This very point has been explained in Spandakārikā in another way. "Mantras on catching hold of the power of Spandatattva, get endued with the power of omniscience and perform their function, just as the senses of the embodied do. To explain it more clearly it means that स्वातन्त्र्य शक्ति (Svātantrya Śakti) rises the energy of will, then energy of knowledge rises and then energy of action rises, then universal energies get rise. All these energies get rise or flowout from Svātantrya Śakti. So this energy of Svātantrya of Lord Śiva creates universal energies not only Will. Knowledge and Action. It is why rise of Mantra the supreme. I is explained there that supreme I is every where. In that also in 1st person, 2nd person and 3rd person, the universal person takes place. Not individual 1st person, because as long as there are three persons concerned these are all individual person beings. This whole universe is divine filled with bliss and bliss alone. This Mantra Vīrya is obtained by this particular way of meditation. That Mantra Vīrya is all power of all letters beginning from A to Z or from अ to क्ष because all sounds rise from letters and that sound is called शब्दराशि (śabdarāśi) and the power and essence of all those sounds is one sound that is I, the sound

of "I being" " अहं being", and that is मन्त्र वीर्य.

तदेवं 'चैतन्यमात्मा' इत्युपक्रम्य तत्स्वातन्त्र्यावभासित तदख्यातिमयं सर्वमेय बन्धं यथोक्त उद्यमात्मक भैरवसमापत्तिः प्रशमयन्तीं विश्वं स्वानन्दामृतमयं करोति, सर्वाश्च सिद्धीः मन्त्र वीर्यानु प्रवेशान्ता ददाति॥ इति शाम्भवोपाय प्रथनात्मा अयं प्रथम उन्मेष उक्तः। अत्र तु मध्ये शक्ति स्वरूपं उक्तं, तत् शाम्भवरूपस्य शक्तिमत्ता प्रदर्शनाभिप्रायेण इति शिवम्॥

तदेवं– as has been described in first sutras that "चैतन्यं आत्मा"– awareness which has absolute freedom of knowledge and activity is the self", तत्स्वातन्त्र्यावभासित– brought about by the absolute freedom of consciousness, अख्यातिमयं– of the nature of ignorance, सर्वमेव बन्धंतत् all that is bondge, यथोक्त– already said in Sutrā no 5 "उद्यमो भैरवः" उद्यमात्मक– sudden emergence of, भैरव समापत्तिः– acquisition of Bhairava-consciousness, प्रशमयन्ती– sets at rest, विश्वं– which makes the universe, स्वानन्दामृतमयं- full of, अमृत– nectar, through its bliss, सर्वाश्च– and all, सिद्धीः– superpowers, ददाति– secures मन्त्रवीर्य– the generative source of all other Mantras अनुप्रवेशान्ता– right upto one's establishment into that मन्त्र। इति शाम्भवोपाय प्रथनात्मा– so this first awakening of Śivasūtra is one with शाम्भव उपाय (śāmbhavopāya) and it has been explained in it.

अत्रतुमध्ये शक्तिस्वरूपं उक्तं– though there are in many places the hints of Śāktopāya also, तत् शाम्भवरूपस्य शक्तिमत्ता प्रदर्शनाभिप्रायेण– but that Śāktopāya is described just to carry you to Śāmbhavopāya, इति शिवम्– may there be prosperity to all.

Here ends the first section of Śiva Sūtra along with Vimarśinī commentary by Kṣemarāja.

For attaining Bhairava consciousness, as has been described in "उद्यमो भैरवः" (Sutra five) is abrupt emergence of Supreme I-consciousness which sets at rest all bondages of the nature of ignorance brought about by the freedom of consciousness making the entire universe full of अमृत (amṛta) because of its own bliss. Moreover it bestows all the extraordinary power

right upto aspirant's establishment into that mantra which is the generative source of all other mantras.

So this first awakening of Śiva Sūtra is designated as the display of Śāmbhavopāya. Though there are in many places the hints of Śāktopāya also but that is just to carry you to Śāmbhavopāya. Let there he auspiciousness to all.

Here ends the first unmeṣa of Śiva Sūtra.

(To be continued)

MALINI - Quarterly Magazine

Annual Subscription : Rs. 80.00

Price Per Copy : Rs. 20.00

Overseas Subscription : US$25.00

All correspondence & subscription must be sent to the Administrative Office :

Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Phone : 555755, 553179

Information regarding printing & publishing etc. can be had from Branch Office

F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044.
Phone : 6943307

GOD-MAN SHIN SHIVA SVAYAMBHŪ'S COMMAND FOR NEW MILLENNIUM

With the total solar-eclipse of last year and the last millennium I have brought Kali Yuga to an end. And I have come to the Earth with my five powers, which are also called the five faces, and have sent out my Eagle-being and its power, my Lion-being and its power, my Bull-being and its power, and my being and united power-the new human being.

You are longing for a new, true human state of genuine human dignity, of wisdom and creativity, of love, freedom and peace.

It rests with God to create the new human being, for the creation is my work! But you are not yet pure and not beyond the temptation of evil, how can you create a new human being? Your experiments with the holy life-substance of the plant, animal and human being do not originate in your true holy 'I am'. Your laboratories are directed with cold greed for knowledge, coldheartedness and contempt for life.

The spirits who inspire you really hate God, the human being and the whole creation. They want to ruin you and they have almost succeeded! But they have not considered that God Himself enters the sphere of life and that the good humanity could arise.

Know, you who have become disloyal and hate the being of love, that the time of purification has begun. I will burn to ashes that which is rotten and corrupt, so that I can fertilize the earth anew. Life is resurrected and has come again.

I am life, and life will outlive all which is evil and destructive.

You have plundered and spoiled the earth. You cannot get enough of everything and so you destroy yourselves. Before you can damage God's work, I will break your self-given authority and elevate myself through all human beings who are truly alive.

Whoever understands this call will join the living, and that which wants to bring destruction to all beings will be destroyed through the fire of life of the awakened ones.

You are greedy for the land the treasures of your neighbour. Although you know that all people and all religious streams together can bring healing for creation, mankind and the whole earth, you still think that you can bring peace through war!

You want to rule the world, if you had your way, you would destroy the world!

The one God who loves all religions, the God and Lord of all has arrived!

You Buddhists seek a pure way, but think that there is no all-pervading God, only ever returning human gods. Be instructed anew by your masters, know however that I exist and have come with all my might to the earth.

Consider that it has been said, that one in KALKI in carnation (कल्कि अवतार) will come who will reveal the divine, who will purify the world with all powers. He will correct all error in the different religions and will free human beings from the narrow self-given authority of some proud priests. I will create a new race of priests from the best of all religious streams and choose the wisest and best people from the cultures, in order to raise mankind to a new healthy evolution.

You Jewish people, sons and daughters of Abraham, believe yourselves to be the chosen people of God into all eternity. Rightly you know that God loves you, but you have become impertinent, selfish and arrogant and you have become your own enemy.

How can I uplift a people, who despises others? You call on me, the Messiah, the promised redeemer. Do you want to sleep, when I come a second time, a third time?

The Lord will awaken you with fire, the light of knowledge will burn you!

I, Siva, call to you, Hindus, with power and warning: You have the oldest unbroken tradition and many of you have remained faithful to the old holy teachings, which I, Siva, have given in earlier times.

But know, my children that father and mother only do all the work for their children and the creation for a time, but now it is your time of maturity and so I call upon you to co-work willingly and with all strength and with all your love for God.

God now wants free co-workers!

Know that you are Gods!

Don't wait until you are rotten and dried out, but come to me and bring forth young fruit.

Sacrifice your work for the earth to me on the altar of life.

You, who call yourselves Christians, could have been my greatest joy, but are instead my deepest heart's agony!

My first followers, 2000 years ago, brought messages of healing and happiness to all people so as to uplift mankind to a new stage, with living teachings of the true human being.

My true being and life was distorted by those who came later. The people were deceived by the priests and the devil built himself a sacred place in my name!

Instead of signs of life of nourishment and love–they erected the cross–the symbol of pain. Instead of honouring the victor who overcame the cross, you allow them, to crucify me further.

Stop crucifying me!

I am resurrected and have come again. No demon and no adversary can stand against me. I hold my heavenly sceptre and that is the lightening of the birth of the cosmos.

Woe to those who corrupted the holy teachings and who feed human beings with the poison of lies.

It is the time when all lies must show themselves, the evil will be driven out, lies will be exposed and those that sin against love will punish themselves!

I am love and I wish to bestow new life on all my creatures.

The old and adverse will be consumed in my fire of love. But those who are on a good path, no matter in which religion, who respect and care for the earth, who protect and guard nature, who love God, their creator–Father-Mother, to these I will give my new kingdom!

These are not the words of a disturbed chatterer. These are not the speeches of a self-proclaimed king, these are not the sentences of an agitator of the people, rather:

I am the one, whom you long for, but have not expected. Your nearest and only friend. And I have come with all my armies.

When I rise up, millions will arise, and these millions will speak to the self-proclaimed and high-handed priests and kings, who enslave the people for their own enjoyment and keep them hungry and in need.

This is the fire-word of life:

He was the ram and we were the lambs, and you have persecuted and enslaved love. Now He has come again as Eagle, as Lion, as Bull and we are His family, we are His body.

We will extinguish your power and throw you from your throne, and banish you from the world and make creation and mankind healthy again.

All your weapons will be burnt up in the flames of the fire of love!

The dark age is at an end and your self-given authority crumbles to ash and dust.

There is only one Almighty God and the God of Love enters into the WE of humanity.

ŚŪNYA IN VIJÑĀNA BHAIRAVA

Dr. Bettina Baumer

Some of the basic Tantras of Kashmir Śaivism describe the stages of spiritual experience as different forms of the Void, among them are the Svacchanda Tantra and the Vijñāna Bhairava. The French scholar and mystic Lilian Silburn has published an artical on "the seven voids", based mainly on the Svacchanda Tantra. I want to focus attention on the Vijñāna Bhairava, the most practice-oriented Tantra of the non-dual Śaiva texts of Kashmir, which is called "the essence of the Rudrayāmala (Tantra)", and which is constantly referred to as authority by later writers. Abhinavagupta calls it the Upaniṣad of the knowledge of Śiva (Śivavijñāna Upaniṣad). Among the vast literature on Tantric Yoga this text stands out by its directness, practicality and methods of concentration, called dhāraṇās or ways of Yoga, which involve the body, breath, mind, the universe and all levels of consciousness, from the most the universe and all levels of consciousness, from the most down-to earth experience to the supreme level of awareness.

In this (short) paper I want to present this text from two points of view: an analysis of the language, in the context of *śūnya -pūrṇa*, and from the point of view of mystical experience.

The logo of our Seminar is the wheel, *cakra*, and ancient Vedic and Buddhist symbol. One of the most ancient Sanskrit words for Void is *kha,* which means the nave of the wheel, the empty space which makes movement and dynamism possible. It also denotes the hollow of the sense-organs and the hollow of the channels in the body. Lilian Silburn had already noted the significant terminology of the void: There is "the void in the depth of interiority - pierçing through the phenomena in order to reach the Self-and the void of extension-the void of immensity which expands to the measure of the universe.

The Śaivites denote the void of interiority by the term *kha*, the void of the nave of the cosmic wheel, of the conscious energies, and the void of the immensity by *vyoman,* the infinite firmament of Consciousness to which the first leads.

Both are again divided into a passive void called śūnya, and a dynamic, unspeakable, void, anākhya." (Le Vide, Hermas 6, p.214) I may add to Silburn's observations that the Śaivites prefer the adjective śūnya to the abstract noun śūnyatā, and the adjective is often used in the sense of a noun. An analysis of the Vijñāna Bhairava also reveals another distinction: if śūnya denotes a state of consciousness, laya–merging, dissolution, absorption, indicates the dynamic, active aspect of the void, movement towards the void.

This terminology already indicates some of the dimensions of the void as described in the Vijñāna Bhairava. We may straightaway go to the text.

As most Śaivāgamas, the Vijñāna Bhairava is also presented in the form of a dialogue between Śiva and Śakti, or Bhairava and Bhairavī. This is not only a rhetoric frame, but it has a deeper significance. At the beginning of the text the goddess asks Bhairava that, although she has studied all the (Yāmala) Tantras, she is not satisfied because here doubts are not yet cleared (verse 1). According to Śaiva philosophy this means that the goddess whose very nature is knowledge (*jñānaśakti*) and the word, especially the revealed word of the Āgamas (*vāc*) is pretending ignorance on behalf of the ignorant beings who need to be enlightened by divine revelation. By her questioning she thus leads the reader/listener from a purely textual, theoretical knowledge of the Tantras to an experiental knowledge gained by the practice of the *dhāraṇās*. At the end of the text the goddess expresses her satisfaction by addressing the great god (Mahādeva) that "today" she has been fully satisfied by understanding the essence of the Tantra, upon which she becomes one with Śiva. This narravite frame is couched in a very human language, but it implies that the goddess, who stands here for every seeker, passes from a state of dissatisfaction of ignorance, of emptiness, to a state of satisfaction, of knowledge, of non-dual fullness (*partṛptāsmi...*, v.161). This is explicitly stressed at the end of the *dhāraṇās*, in a concluding verse:

If anyone is established in any of the ways (described here), what he experiences is fulfilled day by day, until his spiritual satisfaction reaches its utmost fullness. (v.148) (*sā atra tṛptiratyanta-pūrṇatā*)

But the way to reach this spiritual fullness and perfection is the way of complete emptying, of "attaining the form of the void" (*śūnyākāra*). We may now see the different dimensions of śūnya and the various approaches to this experience of the void.

1. An important meaning of śūnya is related to the intermediary space or time between any two things, happenings or experiences (also called *madhya,* or *sandhi*). An awareness of this gap or intermediary void is one of the most essential spiritual practices of the school.

   The very first practice which is taught by Bhairava to Bhairavī concerns the most natural manifestation of all living beings, i.e., breath, *prāṇa.* The awareness has to be focussed on the two voids, at the end of breathing in and breathing out, and there itself the supreme reveals itself (v.25). This fundamental practice of awareness on two points leads to a unification in the thoughtfree centre:

   The Energy of Breath neither moves out nor enters within (when the centre unfolds by the dissolution of thoughts (nirvikalpatayā), the one attains the nature of Bhairava. (v.26)

   Thus the concentration on the two voids of breath terminates in the one centre, *madhya,* which is itself void and therefore gives access to the Supreme.

   The same practice is extended to the middle or in-between of any two things or states, for which many examples are given:

   Meditating on the knowledge of two things or states one should rest in the middles by abandoning both simultaneously, the Reality shines forth in the centre. (v.61)

   Our perception normally moves from one object or mental state to another, but there are different practices-either to perceive both things and rest in the centre, or to stop the mind from moving on to another object:

   When the awareness has abandoned one object and remains fixed without moving on to another object, then through the state in

between (the two) the supreme realization will unfold. (v.62)

In relation to speech or mantra, the awareness of the void or silence between utterances should be developed:

O Bhairavī, by uttering the *praṇava* (mantra) and by meditating on the void at the end of the protracted sound, one attains the state of the Void by means of the Supreme Energy of the Void. (v. 39)

One should meditate on the beginning and end of (the uttering of) any letter (or mantra) by becoming void due to the power of the void, one will reach the state of pure Void. (v. 40)

The described *dhāraṇās* on the void in-between any two breaths, two objects or experiences, are clearly aiming at overcoming our normal dualistic perception and reaching a state of nirvikalpa, free from the oscillating thoughts, and making the mind supportless (*nīrālamba,* another characteristic of *śūnyatā*). This extends even to very ordinary experiences:

At the beginning and end of sneezing, in a state of fear or sorrow, (standing) on top of an abyss or while fleeing from a battlefield, at the moment of intense curiosity, at the beginning or end of hunger; such a state comes close to the experience of Brahman. (v.118)

One verse which not only stands out by its imagery, but which is also quoted most frequently by later authors, is related to the sense-organs (although the term *indriya* does not occur):

By meditating on the voids of the senses which are like the various colours of the peacock's feathers, the yogī enters in the Heart of the absoulte Void. (v.32)

The simile of the feathers of the peacock is rich in that it suggests at the same time the beauty experienced by means of the sense-organs, as well as the *void,* the openings of the senses, which are described as *khāni* already in the Upaniṣads. The following verse is also significant because it links up:

In the same way, if one concentrates one's awareness on anything,

be it an empty space, a wall, or a worthy disciple, this (energy of concentration) will merge by itself and bestow grace. (v.33)

Here different aspects of the void are made the object of concentration.

3. An important practice consists in concentrating on the body as being void, within and without. A whole series of *dhāraṇās* is directed at emptying the body, or rather the awareness of the body, of its apparent substance. These practices include: meditation on the inner space in the skull (v.34, ...), concentration on the hollow of the central vein (*madhya-nāḍī,* i.e., *suṣumnā,* v.35), meditation on the void below and above as well as in the heart (verses 44-45), and conceiving all the parts of the body as void (v.47). The visualization used for attaining this aim is to conceive the skin like an outer wall with nothing inside (v.48), or to conceive the heart as consisting of two bowls in lotus-shape, one from below and the other from above, being empty in the middle (v.49). This is a meditation on the empty space of the heart (*hṛdayākāśa*) which we find in the Upaniṣads. This is a process of interiorization. A summary *dhāraṇā* of these meditations on the body as void could be verse 43:

One should meditate on the void in one's own body on all sides simultaneously. When the mind has become free from thoughts, one experiences everything as the Void. (v.43)

If *śūnya* pervading the body and all its parts refers to a static condition, its corresponding process is to meditate on the body as being consumed by the fire of Time (*kālāgni,* v.52), and the same process is to be applied to the universe (v.53). A similar *dhāraṇā* consists in meditating on the body as well as the universe in a reverse process of absorbing all the elements into ever subtler constituents (v.54). The end result of these *dhāraṇās* is the supreme state of consciousness (*pumbhāvaḥ paramo bhavet,* v.53, and *vyajyate parā,* v.54)

4. Meditation on the cosmic space is the complementary aspect in the micro-macrocosmic scheme. It comprises the space outside the

body, the unlimited sky and the all-pervasiveness of empty space which already in the Upaniṣads is the closest symbol of Brahman: *ākāśa, vyoman.*

O Great Goddess! If one imagines this whole universe as being void, one's mind gets dissolved in it and one becomes worthy of merging in that (supreme Void). (v.58)

It may not be easy to conceive at once the entire universe as void, but there are practical *dhāraṇās* leading to this experience:

One should cast one's gaze on an open (stretch of) land devoid of trees, mountains, walls, etc. When the state of the mind is fixed there, then the fluctuating thoughts dissolve. (v.60)

Looking at the open sky is a way of entering the pure, non-dual consciousness (v.84). Finally, the two meditations on the void of the body and and of the universe have to merge in one realization:

If one contemplates simultaneously that one's entire body or the world consists of nothing but Consciousness, then the mind becomes free from thoughts and the supreme awakening occurs. (v.63)

It fact, this micro-macrocosmic void corresponds to a state filled with bliss:

(The yogī) should contemplate simultaneously on the whole world or his own body as filled with the bliss of the self, then by his own blissful nectar he becomes united with the supreme bliss. (v.65)

The thoughtfree void state is the very condition for experiencing the highest bliss.

5. Twice we find the term *śūnyalaya:* One comes as the result of a *dhāraṇā* where the attention is focussed on an object and then withdrawn from it. It can be understood that the yogī then "becomes an abode of the Void" (or abides in the Void, which amounts to the same, v.120). The second instance speaks of the true, i.e. spiritual home or fire sacrifice, which consists in an offering of the elements, the senses and the objects of the senses in "the fire of the great Void"

(*mahāśūnyālaye vahnau,* v.149), which is the fire of pure Consciousness, where the individual consciousness (cetanā) serve as the ladle.

Though the contexts differ, the use of the term is important. It may also be related–conceptually, not historically–to a much later manifestation, namely to the use of terms such as *śūnyamandira/ śūnyasthāna* by the Oriya mystic poet Bhaima Bhoi of the 19th century.

6. The Buddhist philosophical concept of the emptiness of all things is not absent from the Vijñāna Bhairava:

   ātmano nirvikārasya kva jñānaṃ kva ca va kriya /
   jñānāyattā bahir-bhāvā ataḥ śūnyam-idaṃ jagat // 134

   How can the immutable Self have any knowledge or activity? All external objects depend on our knowledge of them. Therefore this world is void.

   Meditation on the non-reality of things is enjoined to the yogī (v.133), who therefore realizes the void nature of the world:

   viśvam-etan-mahādevi śūnya-bhūtam vicintayet /
   tatraiva ca mano līnaḥ tatas-tallaya-bhājanam // 58

   O Great Goddess! If one imagines this whole universe as being void, one's mind gets dissolved in it and one becomes worthy of merging in that (supreme Void).

   And yet, the difference from Buddhism is that meditation on the void leads to a merging in the Ultimate Reality which, as in the Upaniṣads, is only indicated by tat "that" (*tallayaḥ*).

7. The ultimate Reality, the Unsurpassable is itself Void (*anuttara śūnya,* v.32). It is understood to be Śiva or Bhairava, but the text rarely makes any theological statements. However, in one verse the equation is clearly expressed in the form of a meditation:

   Yadavedyaṃ yadagrāhyaṃ yac-chūnyaṃ yadabhāvagam /
   tat-sarvaṃ bhairavaṃ bhāvyaṃ tadante bodha-sambhavaḥ // 127

The unknowable, the ungraspable, the void, that which even pervades non-existence, contemplate on all this as Bhairava. At the end (of this contemplation) illumination will dawn.

This absolute Void is also called *advaya śūnya* (v.89). Both the terms relating to the Absolute level, *anuttara* and *advaya*, are also central to the Buddhist Tantras. The difference is that the result of this particular practice is described as: *tatraiva ātmā prakāśate* (v.89), i.e., in that very state of non-dual void, the Self shines forth or reveals itself. At this level Śiva is described by negations culminating in *śūnya.*

We have spoken of different dimensions of *śūnya* (rarely *śūnyatā*), and the text itself consciously refers to these levels, as in the phrase: *śūnyayā parayā śaktyā śūnyatām eti bhairavi* (v.39). Here it is by means of the supreme Śakti who is Herself the Energy of the Void that the (ultimate) state of the Void is attained. In terms of Trika we can relate this to the Śakti and Śiva levels, whereas the Nara or Aṇu level is found in the physical experience of the void. In the very next verse these three levels are referred to: *śūnyayā śūnabhūto'sau śūnyākāraḥ pumān bhavet* (v.40). "By the experience (or power) of the void he becomes void, and assumes the form of Void itself." Thus *śūnya* is both, the means and the end. However, this end is not simply a negative state, for, as we have seen, the culmination of all the 112 *dhāraṇās* is called a state of satisfaction (*tṛpti*, v.148 and 161) which is described as utmost fullness (*atyanta-pūrṇatā,* v.148).

This paper was read at an Inter-religions Retreat Seminar
on Śūnya-pūrṇatā and Pleroma,
conducted by Abhiṣiktānand Society of New Delhi
at Sarnath Varanasi from December 11-16, 1999.
Courtesy–Abhiṣiktānanda Society, New Delhi

त्रिपुष्प

Dr. R.Panikkar

ॐ

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥

(ऋग्वेदः १०.१२१.१)

In the beginning arose the Golden Germ:
he was, as soon as born, the Lord of Being,
sustainer of the Earth and of this Heaven.
What God shall we adore with our oblation?

ॐ

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम्॥

(ऋग्वेदः १०.१२९.१)

At first was neither Being nor Nonbeing.
There was not air yet sky beyond.
What was its wrapping? Where? In whose protection?
Was Water there, unfathomable and deep?

ॐ

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णत्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

(ईशोपनिषद्)

That is Fullness, this is Fullness,
From Fullness comes Fullness.
When Fullness is taken from Fullness,
Fullness remains.

विज्ञानभैरव-समीक्षात्मक अध्ययन

मूल प्रवचनकार– शैवाचार्य ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मणजू महाराज

भाषानुवाद–प्रो० मखनलाल कुकिलू

(गतांक से आगे)

स्वदेहे जगतो वापि सूक्ष्म सूक्ष्मतराणि च।

तत्त्वानि यानि निलयं ध्यात्वान्ते व्यज्यते परा॥५४॥

(अन्वय–स्वदेहे जगतो वापि सूक्ष्मसूक्ष्मतराणि च तत्त्वानि यानि (सन्ति) तेषां निलयं ध्यात्वा अन्ते परा (देवी) व्यज्यते॥)

अपने शरीर के साथ सम्बद्ध अथवा सारे जगत के साथ सम्बद्ध जो सूक्ष्म और सूक्ष्म तत्त्व हैं उनका अपने-अपने कारणों में विलय होने के भाव का ध्यान करके, अन्त में परादेवी प्रकट होती है।

यह धारणा शाक्तोपाय की है। क्योंकि जब इस धारणा का सम्बन्ध शरीर के साथ है तो यह शाक्तोपाय का एक अंग है। शाम्भवोपाय का अंग नहीं बन सकती।

सूक्ष्म सूक्ष्मतराणि च–सूक्ष्म और सूक्ष्मतर तत्त्व।

तत्त्वानि यानि–अपने शरीर में अथवा समूचे जगत में जितने विभिन्न तत्त्व हैं उनका क्रमशः एक दूसरे में विलय होने का ध्यान करके अर्थात् क्रमशः अपने शरीर को स्वप्नावस्था की सूक्ष्मस्थिति में ले लो फिर उस स्वप्नावस्था की सूक्ष्मस्थिति में उसे सूक्ष्मतरस्थिति सुषुप्ति की ओर ले लो, फिर उस सूक्ष्मतर स्थिति सुषुप्ति अवस्था से पराहन्तास्वरूप तुर्या अवस्था की ओर अपने शरीर को ले लो, फिर उस तुर्या दशा को तुर्यातीत अवस्था की ओर ले लो और इसीतरह इस विधि को क्रमशः अपनावो। अथवा शरीर के स्थान पर स्थूल जगत को ले लो। कल्पना करो कि स्थूल विश्व आप की चेतना में विद्यमान है, आपकी व्यक्तिगत चेतना में। उस व्यक्तिगत चेतना को अहं परामर्श में ले लो, फिर उस अहंपरामर्श को विश्वाहन्ता में ले लो।

निलयं–यह इस क्रम की विधि है। यह एक के बाद एक में विगलन की रीति है।

अन्ते–अन्त में परा भट्टारिका का साक्षात्कार होता है।

व्यज्यते–प्रकट होता है।

परा–पराहन्ता।

यह शाक्तोपाय है।

अगली धारणा आणवोपाय की है जो शाम्भवोपाय की ओर लेती है:–

पीनां च दुर्बलां शक्तिं ध्यात्वा द्वादशगोचरे।
प्रविश्य हृदये ध्यायन् मुक्तः स्वातन्त्र्यमाप्नुयात्॥ ५५॥

(*अन्वय*–शक्तिं (आदौ) पीनां ध्यात्वा (ततः) (क्रमेण) दुर्बलां द्वादश गोचरे ध्यात्वा, हृदये प्रविश्य ध्यायन् (साधकः) मुक्तः (सन्) स्वातन्त्र्यं आप्नुयात्।)

अधिक सुख साधनों का उपभोग करने से या अधिक भोजन पानी का सेवन करने से प्राणी का शरीर ही नहीं अपितु प्राणशक्ति भी मोटी होती जाती है। जब गुरु दीक्षा से अलंकृत होता है तो सतत अभ्यास से शरीर के पीनत्व (मोटापे) के साथ-साथ प्राणशक्ति भी पतली होती जाती है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बनी हुई इसी प्राणशक्ति का जब साधक द्वादशान्त स्थान और हृदय में ध्यान करता है वह मुक्त होता है और उसमें परमेश्वर की स्वातन्त्र्यशक्ति पूर्णरूप से प्रकट होती है।

"मुक्तः" के स्थान पर "सुप्तः" भी पाठान्तर है। पर स्वामी जी महाराज कहते है कि "मुक्तः और सुप्तः" दोनों पाठ अशुद्ध हैं। "मुक्तः" स्वातन्त्र्यं आप्नुयात्" इस पाठ के स्थान पर "स्वप्न स्वातन्त्र्यं आप्नुयात्" पाठ ठीक है। यह पाठ भगवान् शंकर के मुख से उद्भूत है। यह स्वप्नावस्था में साम्राजत्व का सूचक है। स्वप्नावस्था में कैसे कोई आधिपत्य को प्राप्त कर सकता है?

शक्तिं–प्राण शक्ति को। साधक की प्राणशक्ति द्वादशान्त में प्रतिष्ठित होके स्वातन्त्र्य शक्ति के साथ एक हो जाये। इस प्राणशक्ति को द्वादशान्त में केन्द्रीभूत करना चाहिये। द्वादशान्त की व्याप्ति के तीन स्थान हैं। हृदय या कण्ठप्रदेश या भ्रूमध्य। इन तीन स्थानों में से किसी एक स्थान पर द्वादशान्त का अस्तित्व होता है। अपनी प्राणशक्ति की एकाग्रता इन तीनों में से किसी एक स्थान पर रहनी चाहिए–भ्रूमध्य या कण्ठस्थान अथवा हृदय पर। ये द्वादशगोचर की तीन अवस्थायें हैं। आपकी प्राण शक्ति इस द्वादशगोचर पर ही केन्द्रित हो। यह प्राणशक्ति पीनावस्था तथा दुर्बलावस्था दोनों में सक्रिय हो। पीनावस्था से अभिप्राय प्राणशक्ति का शब्द सहित होना तथा दुर्बलावस्था से प्राणशक्ति का आयाम सहित होना अभिप्रेत है। अर्थात् अनुरणन और आयाम का होना प्राणशक्ति की मुख्य विशेषता है। इस प्रक्रिया से पूर्व किसी आसन पर किसी मुद्रा में आसीन होवे। फिर उत्तानावस्था में लेटे रहे। इस प्रकार का अभ्यास करते रहिये ताकि यह प्राणशक्ति इस रूप में कार्यान्वित हो कि यह शब्द भी प्रकट करे और इसका आयाम अधिक से अधिक रूप में दीख पड़े जिससे साधक की समाहितता में भंग न हो।

इस प्रक्रिया का अभ्यास कुछ देर के लिए करते रहिये और जब साधक का सिर

चकराने लगे और वह विश्राम का इच्छुक होवे तो इस प्रक्रिया के अभ्यास में बिना ढ़ीलापन लाये वह उत्तानावस्था में लैटे रहे। पर सिर चकराने में या झपकियों के आने में कमी नहीं होगी। यह तो चलता रहेगा। इस प्रक्रिया का अभ्यास विशिष्ट अंगविन्यास में कुछ देर के लिए झुकने के बिना पहिले करना चाहिए। झपकियां आने में या सिर चकराने में पुनः इस अभ्यास को अनन्यचित्त से अपनाना चाहिए। नीचे लेटने पर भी इसे छोड़ना नहीं चाहिए।

हृदये–जब साधक हृदय में स्थित हो अर्थात् हृदय द्वादशान्त कण्ठप्रदेश या भ्रूमध्य में स्थित हो। इन तीनों का एक ही नाम हृदय है।

ध्यायन्–जो साधक निरन्तर रूप से इस का अभ्यास करता है।

प्रविश्य–स्वप्नावस्था में प्रवेश करने पर स्वप्नस्वातन्त्र्यं आप्नुयात् – साधक स्वप्नावस्था में भी शक्तिमान् बन जाता है। अर्थात् ज्यों ही वह साधक स्वप्नावस्था में प्रवेश पाता है, वह इस बात से परिचित रहता है कि वह स्वप्नावस्था में प्रवेश कर चुका है। फिर उस साधक पर यह निर्भर रहता है कि कौन सा स्वप्न, स्वप्नावस्था में वह देखे। यदि वह भगवान् शंकर को सपने में देखना चाहे तो भगवान् शंकर सपने में प्रकट होंगे। यदि वह भौतिक पदार्थों को देखना चाहे तो यथाभिलाषित पदार्थ सपने में प्रकट होगा। तात्पर्य यह कि जिस किसी की अभिलाषा वह करता है उसका साक्षात्कार उसे स्वप्नावस्था में होता है। एवं यह साधक न केवल जाग्रत अवस्था में अपितु स्वप्नावस्था में भी स्वप्नस्वातन्त्र्य का अधिकारी बनता है। क्योंकि यह साधक तुरीय स्थिति में प्रवेश पाता है और इस प्रकार की स्वप्नावस्था तुरीय स्थिति का ही एक अंग है यह साधक इस स्थिति से परिचित होता है अतः वह अपनी इच्छा के अनुकूल स्वप्नावस्था को प्राप्त करता है।

इस स्वप्नावस्था में भी प्राणशक्ति के साथ उद्भूत शब्द सुनाई देगा। साधक ने इस शब्द की ओर विशेष ध्यान रखना है क्योंकि उसने इसका अभ्यास किया होता है। साधक दो घण्टों को इस साधना का अभ्यास करे विशेष अंगन्यास का आश्रय लेकर। फिर यदि नीचे लेटेगा भी वह इसी साधना का अभ्यास अनजाने में भी स्वप्नावस्था में करेगा। यद्यपि साधक उस स्वप्नस्वातन्त्र्य में आरम्भ में प्रवेश नहीं पाये फिर भी वह स्वप्नावस्था में इसका अभ्यास करेगा। स्वप्न में भी वह अनुभव करता है कि वह अभ्यासरत है और लम्बी सांस लेता है।

अगली धारणा भी आणवोपाय की है जो शाम्भवोपाय की ओर अग्रसर है:–

भुवनाध्वादिरूपेण चिन्तयेत्क्रमशोऽखिलम्।
स्थूलसूक्ष्म परस्थित्या यावदन्ते मनोलयः॥

(*अन्वय*–भुवनाध्वादिरूपेण स्थूल सूक्ष्म पर स्थित्या क्रमशः अखिलं जगत् चिन्तयेत्, यावत् अन्ते (तत्रैव) मनोलयः (स्यात्)।)

भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा, कलाध्वा, मन्त्राध्वा, पदाध्वा, और वर्णाध्वा इन षडध्वों (छः अध्वा–Paths) से स्थूल, सूक्ष्म और पर रूप में यह सारा जगत् व्याप्त है। साधक इस भावना का तब तक अभ्यास करता रहे जब तक कि अन्त में उसका मन इसी में लीन नहीं हो जाता। अर्थात् एक योगी भुवन आदि अध्वाओं के रूप में सारे जगत् का क्रमशः स्थूल सूक्ष्म और पर स्थिति में चिन्तन करे। अन्त में उसका मन इसी में लीन होता है।

वास्तव में यह षडध्वा वाच्यवाचक रूप में विद्यमान शब्द और अर्थका ही वैभव है। षड़हवा में से पहले के तीन अध्वा अर्थ से उत्पन्न होते हैं और बाद के तीन अध्वा शब्द से उत्पन्न होते हैं। अर्थात् भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा और कलाध्वा की उत्पत्ति अर्थ से और वर्णाध्वा, पदाध्वा और मन्त्राध्वा की उत्पत्ति शब्द से होती है।

कई रूपों में यह धारणा शाक्तोपाय की समझी जाती है जो शाम्भवोपाय की ओर लेती है।

भुवनाध्वा–इस जगत् की स्थूल संरचना है।

तत्त्वाध्वा–इस जगत् की सूक्ष्म संरचना है।

कलाध्वा–इस जगत् की सूक्ष्मतम या 'पर' संरचना है। इनमें परस्पर व्याप्यव्यापक भाव है। जगत् की स्थूल संरचना को मान लो कि वह जगत् की सूक्ष्म संरचना में व्यापक है और बाद का अध्व (सूक्ष्म संरचना का अध्व) अपने पहले अध्व में (स्थूल संरचना में) व्याप्य रूप से रहता है। इस भौतिक जगत् की स्थूल संरचना को सूक्ष्म संरचना में व्याप्त मानो और फिर उस सूक्ष्म संरचना को पर या सूक्ष्मतम संरचना में एवं क्रमशः स्थूलतर का स्थूल में, स्थूल का सूक्ष्म में सूक्ष्म का पर भाव में विलीन करना चाहिए अन्त में वह मन की परिधि का उलंघन करता है।

अन्ते–अन्त में अध्वशोधन प्रक्रिया के आधार पर शिवतत्त्व के स्वरूप का चिन्तन करने से साधक का मन विलीन हो जाता है। अर्थात् इस षडध्व प्रक्रिया का सहारा लेकर साधक स्वरूपसाक्षात्कार तक पहुंच सकता है।

मनोलयः–मन का उल्लंघन करता है, वही समाधि है।

क्रमशः

शैवदर्शन के वातायन से

प्रो० नीलकंठ गुर्टू

स्वरूप– शैव परिभाषा में यह शब्द अवर्णनीय एवं स्वयं सिद्ध चित्-प्रकाश का बोध कराता है। वह लोकोत्तर रूप, जो नित्य केवल आत्मरूप में ही रममाण रहनेवाला, परिनिष्ठित आत्मरूप के अतिरिक्त अन्य किसी भी अनुगामी से रहित, पारदर्शी और देश, काल, आकार इत्यादि के अवच्छेदों से अतिक्रान्त है, 'स्वरूप' कहलाता है।

भेदन– मूलतः अन्तर्मुखीन संवित्-भाव में बिल्कुल भेदहीन संवित्-रूप में ही वर्तमान रहने के स्वभाव वाले प्रमेय पदार्थों को बहिर्मुखीन स्थूल रूप में अवभासित करने के क्षण पर, केवल ईश्वरीय संकल्पमात्र से ही, पलभर में एक दूसरे से विलगा कर, अलग अलग अटालों और आकार-प्रकारों में अवभासित कर लेना। दूसरे शब्दों में इसको 'वियोजन' भी कहा जाता है।

अभेदन–उन्ही बहिर्मुखीन स्थूल रूप में भेदभाव में व्यवस्थित किए हुए प्रमेय पदार्थों का, भात एवं भासमान के एकीकरण की शास्त्रोक्त युक्ति के द्वारा, फिर भी, भेदहीन अंतर्मुखीन संवित्-भाव में ही विश्रान्त कर लेना। इसको दूसरे शब्दों में 'संयोजन' भी कहते हैं।

स्वातन्त्र्य–"चिन्मयपुरुष की बहिरंग रूप-विस्तार की उन्मुखता की दशा में स्वरूप-संवित् का, संकल्पमात्र से ही, भिन्न-भिन्न प्रमेय रूपों में अलगाना, और उपरान्त फिर भी, अंतरंग विश्रान्ति की उन्मुखता की वेला पर संकल्पमात्र से ही, स्वात्मसंवित् में ही उनको तत्-रूप बना कर विश्रांत कर लेना"– यही तो ईश्वरीय स्वातन्त्र्य है क्योंकि इस प्रकार की निर्विराम चलती रहने वाली क्रियाशीलता में वह (चिन्मय पुरुष) पर निर्भर नहीं है।

आनन्द–यह उपरोक्त 'वियोजन-संयोजन' की स्वाभाविक क्रियाशीलता ही चिन्मय पुरुष का चिदानन्द भाव है जिसके प्रभाव से समूचे कल्पनातीत विस्तार वाले प्रमेय जगत् का बहिरंग प्रसार (भेदन, वियोजन, सृष्टि इत्यादि) और अन्तरङ्ग संकोच (विश्रान्ति, अभेदन, संयोजन) इत्यादि संपन्न हो जाता है। यह परमेश्वर की वियोजन-संयोजनमयी क्रिया शाश्वतरूप में और स्वाभाविक रूप में चलायमान है। इसका न कहीं आदि और न कहीं अंत है। इसी द्विमुखी क्रियाशीलता को 'भेदावभास स्वातन्त्र्य (वियोजन) और अभेदावभास स्वातन्त्र्य (संयोजन) भी कहते हैं।

प्रकाश मय-प्रकाश—यह परामर्श समूचे देह, प्राण, पुर्यष्टक, एवं शून्य तक के जडरूप प्रमेय-विश्व के बहिरंग स्थूल रूप में आभासन (प्रकाशमानता) के अभिप्राय का द्योतक है।

प्रकाशमय-प्रकाश—यह परामर्श समूचे छत्तीस तत्त्वों वाले विश्व में दिखाई देने वाले जीवित भूतों के समुदाय की बहिरंग अवभासमानता (प्रकाशमानता) का वाचक है।

कर्णोपकर्णिका—वास्तविक स्वरूप-प्रत्यभिज्ञान की उपलब्धि शास्त्रों के पुलिंदों की लिखा-पढ़ी करने से कदापि नहीं हो सकती है। यह ज्ञान की पराकाष्ठा सिद्ध गुरुओं और अधिकारी शिष्यों में कानों-कानों की परम्परा से ही आगे-आगे चलती रहती है। अतः इसको कर्णोपकर्णिका कहा जाता है।

ताटस्थ्य—आए दिन चलते रहने वाले सांसारिक या आध्यात्मिक क्रिया-कलापों में मानसिक अरुचि के भाव को ताटस्थ्य कहते हैं। स्मरण रहे यह एक प्रकार की मानसिक दुर्बलता होती है अतः इसको वैराग्य समझने की भूल नहीं करनी चाहिये।

जीवित—शैव परिभाषा में जीवित पदार्थ वही होता है जिसमें 'जीवन कर्तृत्व'-अर्थात् ज्ञान एवं क्रिया का निर्विराम स्पन्दन चलायमान हो।

श्री गुरवे लक्ष्मणाय नमः

आचार्य रामेश्वर झा

यस्यानन्ताद्भुता शक्तिर्भोगमोक्षोभयप्रदा।
प्रत्यक्षं परिदृष्टास्ति तं गुरुं नौमिलक्ष्मणम्॥१॥

यस्यकृपावशादेष पशुराप्नोति दुर्लभाम्।
स्वात्मनः शिवतां स्वच्छां गुरुं तं नौम्यहर्निशम्॥२॥

यो मे गुरुर्विश्वमयोमहेशः
श्री लक्ष्मणाख्यः करुणावतारः।
दैन्यापहारी शिवताप्रदायी
तं नौमि नित्यं मनसापि वाचा॥३॥

यस्य श्री कृपयागुरोः पुनरिदं प्राप्तं वपुर्दुर्लभं
शैवं शक्तिसमन्वितं भुवि नृणां पुण्यैरलभ्यं खलु।
तस्मै श्री गुरुलक्ष्मणाय सततं वाञ्छामि कर्तुं स्वकं
श्रद्धाभक्तिनमस्क्रियादिसहितं देहार्पणं प्रीतये॥४॥

यत्कृपालवपूतोऽहं कालातीतस्वरूपवान्।
जन्ममृत्यू न पश्यामि स गुरुः शरणं मम॥५॥

यो मे स्वात्मसुखप्रदोऽस्ति भगवान् स्वच्छः स्वतन्त्रः स्वराट्
दिव्यादिव्यविभूतिदोगुरुवरः श्री लक्ष्मणाख्यः शिवः।
तं देवं करुणाकरं बुधनुतं भूमौ स्थितं सर्वदं
श्रीमन्तं भगवन्तमेकमनिशं ध्याये स्वकीयं गुरुम्॥६॥

विश्वाभिरामगुणगौरव गुम्फितस्य
श्रीदैशिकांघ्रियुगलस्य महः प्रभावात्।
धन्यस्य मे विषयभोग इदं च विश्वं
मोक्षायते यदिति विस्मयमुद्रितोऽस्मि॥७॥

(सुश्री प्रभादेवी के सौजन्य से)

शैवाचार्य श्री नागार्जुनरचित चित्तसन्तोषत्रिंशिका

— भाषानुवादक
श्री वी. एन. जोत्शी (भट्ट)

(अक्टूबर ९९ अंक से आगे)

दुःखैक सारमिति भीम इति प्रयत्नात्
संसार एष किल यस्य बभूव हेयः।
दिष्ट्या स एव परचिद्रस सामरस्य—
संजीवितः श्रयति तस्य विमुक्तिसाम्यम्॥ ११॥

अर्थ :—जिस मन के लिए मात्र दुख का सार यह भयानक संसार, बड़े प्रयत्न से त्याग देने के योग्य बना वही मन अब अनुग्रहवश परम चित् रस की समरसता से संजीवित होकर इसे अब मोक्ष स्वरूप जानकर अपनाने लगा॥ ११॥

तृष्णा कराल करवाल विलुप्यमानं
यद्विस्मृतात्म विभवं कृपणं बभूव।
उच्चैरकिञ्चनतयापि तदद्य चेतः
स्वात्मविर्मश पर हर्षमुदारमास्ते॥ १२॥

अर्थ :—तृष्णा रूपी भयानक तलवार से टुकड़े-टुकड़े हुआ मेरा मन अपने वैभव को भूलकर अति कृपण हुआ था परन्तु वही अब कुछ भास न होने पर भी अपने स्वात्म विर्मश के द्वारा पाये हुए परम हर्ष से महान बना हुआ है॥ १२॥

कस्यार्जितस्य सुकृतस्य फलं तदेतत्
पुण्योदयस्तव कुतोऽयम् अनन्य लभ्यः।
संविच्छ्रिया गलित भेदविकल्पया यत्
एकं मुहूर्तमपि नैव विमुच्यसे त्वम्॥ १३॥

अर्थ :— हे मन! यह आप के किन उत्कृष्ट कमाए हुए सुकर्मों का फल है जो यह किसी दूसरे से अप्राप्य पुण्य कर्मों का उदय हुआ। क्योंकि भेद विकल्पों से विमुक्त हुई संवित् लक्ष्मी अब एक क्षण मात्र के लिए भी तुम से अलग नहीं हो रही है॥ १३॥

वर्तामहे क्वचन नाम न चित्ता दिष्ट्या
वर्धामहे वयमहो मुदिता भवामः।
यत्त्वां सखे परनिरुत्तर शैवसंपत्
सम्भोगमन्थरतरं परिलोकयामः॥ १४॥

अर्थ :–हे मन! सौभाग्यवश हम हर्ष से फूले नहीं समाते हम आनन्द विभोर हो रहे हैं क्योंकि हे मित्र (मन)! हम आप को उत्कृष्ट निरुतर शिवसम्पदा के संयोग के कारण मस्त व मग्न देखते हैं।

ध्यानेऽर्चनेऽपि न कदाचन काञ्चनापि
कुत्रापि निर्वृत्ति दशां बत यन्न लेभे।
दिष्टया निमग्नमपि संव्यवहारमध्ये
चेतस्तदद्य न विमुञ्चति पारिपूर्ण्यम्॥ १५॥

अर्थ :–आश्चर्य की बात है कि यह मन न ध्यान धारणा से, न पूजा अर्चना से कहीं भी, कभी, कोई भी सुख की दशा जो नहीं पासका पर वही मन परम सौभाग्यवश व्यवहार में डूबा हुआ रहकर भी अपनी परिपूर्णता को नहीं छोड़ता है॥ १५॥

सर्वेषु चित्त मधुपो विषयद्रुमेषु
बभ्राम यः सततमस्तमिताभिलाषः।
दैवादवाप्य परमेश्वरपारिजातं
तृप्तो विलीन इव मुञ्चति चञ्चलत्वम्॥ १६॥

अर्थ :–अक्षीण अभिलाषाओं वाला जो यह मन रूपी भौंरा निरन्तर रूप से अनेक विषयों रूपी वृक्षों पर भ्रमण करता रहा वही मन आज दैव अनुग्रह से परमेश्वर रूपी पारिजात वृक्ष को पाकर तृप्त हुआ है तथा मस्त बनकर अपनी चञ्चलता को त्याग बैठा है॥ १६॥

यैरिन्द्रियैरसि वशीकृत शक्तिश्चेतः
पूर्वं कदर्थितमभूरहितैरिवोच्चैः।
स्वेच्छानिकेत परचिद्रस संविभक्तैः
दिष्ट्याद्य तैरनुचैरैरिव राजसे त्वम्॥ १७॥

अर्थ :–हे मन! पहले तुम जिन इन्द्रियरूपी शत्रुओं द्वारा वश में आया हुआ अगाध दुःख पाता था वहीं इन्द्रियाँ आज सौभाग्यवश स्वच्छ, अपूर्व, परमचित् रस से पूर्ण बनकर तुम्हारे पीछे-पीछे नौकरों की भान्ति फिरती हुई तुम्हारी शोभा बढ़ाती हैं।

चिन्तां ततान करूणं प्रललाप पूर्वं
यत्सङ्कुचत् स्थिति भयं रविजाद्विचार्य।
चेतस्तदद्वयमिदं निजरूपमीक्ष्य
दिष्टयाद्य निर्भयमममन्दमुदात्तमास्ते॥ १८॥

अर्थ :–जो मन इससे पहले चिन्ताओं के अनुक्रम से फैलने के कारण कृपण बना

हुआ विलाप करता रहा तथा महाकाल के डर से अपनी स्थिति का भय जानकर रोता रहा वही मन अब सौभाग्यवश अच्छी तरह अपना अद्वय स्वरूप देखकर निर्भय व्यापक और उत्कृष्ट होकर बैठा है॥ १८॥

नित्यं यदेतदभवद्विफल प्रयासं
हेवाक दुर्ललितमप्रथितात्म भावम्।
संवित्सुधारस चमत्कृति घूर्णमानं
दिष्टया तदद्य नितरां स्पृहणीयमास्ते॥ १९॥

अर्थ :—यह मन अपने आत्म भाव को प्रकट न करने से नित्य विफल प्रयास करने वाला लोभी तथा घृणात्मक प्रतीत होता रहा। पर अब सौभाग्यवश संवित् रूपी अमृत रस पान करने से मस्त बना हुआ अधिक से अधिक प्रसन्न चित्त दीख रहा है॥ १९॥

चिन्ता शताकुलातरं न रतिं कदाचिद्
भीतं भवादभजतैकमपि क्षणं यत्।
चेतश्चिदात्मकमिदं सकलं विलोकच्य
सुप्त प्रबुद्धमिव निर्वृत्तरूपमास्ते॥ २०॥

अर्थ :—जो मन इस संसार की हजारों चिन्ताओं से घबराया हुआ कभी एक क्षण के लिए भी इसका सेवन करके सुख अथवा शान्ति प्राप्त नहीं कर सका वही मन अब इस सारे जगत को अपना चित्स्वरूप देखकर सोने के बाद जगा हुआ मानो आनन्द स्वरूपमय निश्चिन्त बैठा है॥ २०॥

वन्दामहे किमु नुमः किमु गौरवेण
हर्षेण चित्त! किमु नाम निपीडयामः।
संप्राप्त दुर्लभ महोदय शैव संपत्
त्वां कौतुकेन किमु मित्र! विलोकयामः॥ २१॥

अर्थ :—हे चित्त (मन) जो तू अब मित्र रूप ही है क्या हम तुम्हें स्तुति करेंगे या प्रणाम करेंगे या गौरव और हर्ष से तुम्हारे साथ गले मिलेंगे या हे मित्र! क्या बड़े कौतूहल से तुम्हारी तरफ अतृप्त दृष्टि से एकटक देखते रहेंगे क्योंकि तुमने दुर्लभता से प्राप्त होने वाली स्फारित शैव सम्पदा प्राप्त की है॥ २१॥

क्रमशः

ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

Head Office:
Ishber, Nishat,
Srinagar - 190 021
(Kashmir)

Administrative Office :
2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi) - 180 002
Tel - 555755

Delhi Office :
Sarita Vihar,
New Delhi - 110 044
Tel - 6943307
Telefax - 6955611

Place Jammu

Dated 23.4.2000

The Disciples/Devotees of Shri Ishwar Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj assembled in the Ishwar Ashram on 23rd April, 2000 to condole the sad and untimely demise of Smt. Satyawati Kotru at Poona.

Everybody present felt sorry at the sad death and remembered the good and charming nature of Smt. Kotru. Her devotion to Swami Ji Maharaj was also recalled. It was felt that in her death the Ashram have lost an ardent devotee and a sincere person.

It was resolved that a copy of this Resolution be forwarded to Shri B.N. Kotru with the wish that Swami Ji Maharaj may bestow him strength to bear this irreparable loss. Condolences may also be conveyed to daughters of Smt. Kotru particularly Shri Devendra Dhar.

B. N. Kaul (Trustee),
For Ishwar Ashram Trust

संयमी का महाप्रस्थान

आषाढ़ शुक्ल पक्ष त्रयोदशी तदनुसार १४ जुलाई २०००, पच्चासी वर्ष की आयु में भार्गववार को हमारे वरिष्ठ गुरुभाई श्री उदयनाथ जी तिकू सदा के लिए ब्रह्मलीन हुए। आत्मोद्धार में सतत परायण संयमी, साधना प्रेमी श्री तिकू जी का समस्त ईश्वराश्रम परिवार में एक विशेष व्यक्तित्व था। अपने सद्गुरु ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज के ये अतीव चहेते थे। सद्गुरु महाराज के मुख कमल से उद्भूत रविवासरीय प्रवचनों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन अत्यन्त बारीकियों से करके अन्त में पुनः ये प्रायः स्वस्वरूपज्ञ ईशबरवासी महात्मा श्री सतलाल जी के आवास स्थान पर जाकर उनका चर्वण करते थे। आत्मज्ञान का वर्णन करते-करते वे शैव-योगिनी लल्लेश्वरी की उक्तियों का तुलनात्मक ब्योरा देकर अपने व्याख्यान को हृदयाकर्षक बनाते थे क्योंकि लल्लेश्वरी पर इनका अध्ययन बहुत ही गहरा था। पकी उमर में भी रविवासरीय ईश्वराश्रम के कार्यक्रमों में वे विशेष दिलचस्पी रखते थे। बहुत बार सद्गुरु महाराज की निर्वाण जयन्ती पर ये सुदूर से श्रीनगर जाकर प्रधान ईश्वराश्रम परिसर में भक्ति और श्रद्धा से जयन्ती यज्ञ का अनुष्ठान करने में हिचकिचाहट नहीं करते थे।

इनकी मधुर स्मृति में ईश्वराश्रम परिवार तथा ईश्वर आश्रम ट्रस्ट के पदाधिकारी १६ जुलाई रविवार को महेन्द्र नगर जम्मू के ईश्वराश्रम भवन में दिवंगत आत्मा को श्रद्धाञ्जलि देने के लिए एकत्रित हुए। सारे गुरु भाईयों, प्रेमियों और श्रद्धालुओं ने इनकी अद्भुत विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए दो मिनट का मौन रखा और सद्गुरु महाराज से दिवंगत आत्मा की मोक्षप्राप्ति के लिए प्रार्थना की। ईश्वर आश्रम परिवार सदा उनकी निःस्वार्थ भावना, त्याग और बहुमूल्य सेवाओं के लिए आभारी रहेगा।

स्वर्गीय श्री उदय नाथ तिकू के शोकसंतप्त परिवार के साथ हार्दिक सहानुभूति।

स्मरण रहे कि ईश्वराश्रम श्रीनगर और ईश्वराश्रम दिल्ली में भी ऐसी ही शोक सभायें हुईं जिनमें समावेश मयी भक्ति के पात्र श्री तिकू के लिए सद्गुरु महाराज से प्रार्थना की गई कि उन्हें परमानन्दविश्रान्तिदशा प्राप्त हो।

तिथि १६.७.२००० *ईश्वर आश्रम ट्रस्ट*
रविवार *निशात, कश्मीर*

संवेदनासंदेश

ईश्वराश्रम परिवार की आदरणीया सदस्या और गुरुभक्त श्रीमती निर्मला भान (सुपुत्री स्वर्गीय श्री प्रेमनाथ जी सराफ) के पतिदेव का अक्टूबर, सन् १९९९ में देहान्त हुआ। असह्य शोकाघात से नन्हीं निर्मला जी की देहलता मसल गई होगी, इसका अनुमान लगाना असंभव है। सद्गुरु महाराज इन्हें शाश्वत धैर्य और विवेक बुद्धि प्रदान करें जिससे यह इस वज्रपात को सहन कर सकेगी।

गुरुबहिन आदरणीया श्रीमती इन्द्रादेवी कोठेदार (पत्नी स्वर्गीय श्री निरञ्जन नाथ कोठेदार) का देहान्त इसी मास के आरम्भ में हुआ। स्वर्गीया सरल हृदया और गुरुभक्ति परायणा थी। इनकी मृत्यु से आश्रम सच्ची सेविका से वंचित हुआ। सद्गुरु इन्हें यथोचित स्थान प्रदान करें।

ईश्वराश्रम के दिल्ली जम्मू-श्रीनगर की शाखाओं में भी रविवासरीय विशेष सभाओं में इन दिवंगत आत्माओं के आकस्मिक निधन पर हार्दिक शोक प्रकट किया गया तथा इन के उद्धार के लिए सद्गुरु महाराज से प्रार्थना की गई। दोनों मृतात्माओं के उद्विग्न परिवारों से हार्दिक सहानुभूति।

ईश्वराश्रम ट्रस्ट
निशात, श्रीनगर कश्मीर

GREATNESS OF VISWANATHA

Among bathing and cremation ghats Manikarnika Ghat is a famous ghat of Varanasi. Paramahansa Sri Rama Krishna had vision of Lord Śiva there and described it as under:—

"I saw a tall, white person with tawny, matted hair walking with solemn steps to each pyre in the burning ghat, raising carefully every Jīva and imparting into his ear the Mantra of Supreme Brahman.

On the other side of the pyre, the all powerful Mahākālī was untying all the knots of bondage, gross, subtle and causal of the Jīva produced by past impressious and sending him to the indivisible sphere by opening with her own hands the door to liberation.

Thus did Viswanatha, the Divine Lord of the universe, endow him in an instant, with the infinite Bliss of experiencing non-duality, which ordinarily results from the practice of yoga and austerity for many cycles. Thus did He fulfil the perfection of the Jīva's life.

(From Sri Ramakrishna, the Great Master)

New India is one of the first fully Indian insurance companies.

Since its inception 75 years ago, New India has remained firm in its pledge to offer security and support to the people of India.

Over the years, New India has offered a range of pathbreaking insurance covers. From cancer, mediclaim and birthright (unborn child welfare). To low premium personal accident policies for farmers. And cash compensation for the underprivileged, in the event of accidental death of sole breadwinner.

These insurance covers from New India are helping make life a lot more secure. Physically and emotionally.

No wonder, New India remains India's leading general insurance company.

50

NEW INDIA ASSURANCE

A subsidiary of the General Insurance Corpn. of India

75 years of solid, secure support

CONTOUR-NIA-217A/95